eISSN 3139-2377

RESEARCH WORK

A Monthly, Open Access, Peer Reviewed International Research Journal

Volume 02, Issue 06, June 2026

प्राचीन भारत में महिला शिक्षा का उत्कर्ष और पतन : एक ऐतिहासिक एवं विश्लेषणात्मक अध्ययन

ऐश्वर्या सिंह[1]

[1]सहायक आचार्य, शिक्षाशास्त्र विभाग, नवयुग कन्या महाविद्यालय, लखनऊ

Received: 20 June 2026 Accepted & Reviewed: 28 June 2026, Published: 30 June 2026

Abstract

प्राचीन भारत में महिला शिक्षा की स्थिति भारतीय समाज की सामाजिक, धार्मिक तथा सांस्कृतिक संरचनाओं से गहराई से प्रभावित रही है। प्रस्तुत अध्ययन का उद्देश्य प्राचीन काल में महिला शिक्षा की स्थिति का विश्लेषण करना, प्रमुख विदुषियों के बौद्धिक योगदान का अध्ययन करना, महिला शिक्षा के विकास में बौद्ध धर्म की भूमिका का परीक्षण करना, महिला शिक्षा के पतन के कारणों की पहचान करना तथा मध्यकालीन भारत में महिला शिक्षा की स्थिति का मूल्यांकन करना है। अध्ययन ऐतिहासिक अनुसंधान पद्धति पर आधारित है, जिसमें उपलब्ध ऐतिहासिक एवं साहित्यिक स्रोतों का विश्लेषणात्मक एवं व्याख्यात्मक अध्ययन किया गया है। अध्ययन के निष्कर्षों से ज्ञात हुआ कि वैदिक काल में महिलाओं को शिक्षा, वैदिक साहित्य के अध्ययन, धार्मिक अनुष्ठानों तथा दार्शनिक विमर्शों में सक्रिय भागीदारी का अवसर प्राप्त था। गार्गी, मैत्रेयी, लोपामुद्रा तथा अन्य विदुषियों ने ज्ञान-परंपरा के विकास में महत्वपूर्ण योगदान दिया। बौद्ध धर्म ने महिलाओं को शिक्षा एवं बौद्धिक विकास के नए अवसर प्रदान किए, जिससे महिला शिक्षा को प्रोत्साहन मिला। तथापि उत्तरवैदिक काल में उपनयन संस्कार के लोप, बाल-विवाह, सामाजिक रूढ़ियों तथा महिलाओं की घटती सामाजिक स्थिति के कारण महिला शिक्षा में क्रमिक अवनति प्रारम्भ हुई। मध्यकाल तक पहुँचते-पहुँचते महिला शिक्षा सीमित वर्गों तक सिमट गई तथा महिलाओं की शैक्षिक भागीदारी में उल्लेखनीय कमी देखी गई। अध्ययन से निष्कर्ष निकलता है कि प्राचीन भारत में महिला शिक्षा का विकास और पतन सामाजिक, धार्मिक एवं सांस्कृतिक परिस्थितियों के अनुरूप निर्धारित हुआ तथा महिला शिक्षा की स्थिति समाज में महिलाओं की व्यापक सामाजिक स्थिति का दर्पण रही।

मुख्य शब्द: महिला शिक्षा, प्राचीन भारत, वैदिक काल, विदुषी महिलाएँ, बौद्ध धर्म, मध्यकालीन शिक्षा।

Introduction

शिक्षा किसी भी समाज के बौद्धिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक विकास का आधार होती है। किसी राष्ट्र की प्रगति का वास्तविक आकलन उसकी महिलाओं की शैक्षिक स्थिति के आधार पर किया जा सकता है। भारतीय सभ्यता के इतिहास में महिलाओं की स्थिति समय-समय पर परिवर्तित होती रही है, जिसका प्रभाव उनकी शिक्षा पर भी स्पष्ट रूप से दिखाई देता है। प्राचीन भारत के प्रारम्भिक चरणों में महिलाओं को समाज में सम्मानजनक स्थान प्राप्त था तथा उन्हें शिक्षा, धर्म और दर्शन के क्षेत्र में सक्रिय भागीदारी का अवसर उपलब्ध था (अल्तेकर, 1965)।

वैदिक काल में महिलाओं को वैदिक साहित्य के अध्ययन, धार्मिक अनुष्ठानों में सहभागिता तथा बौद्धिक विमर्शों में भाग लेने का अधिकार प्राप्त था। उस समय शिक्षा केवल पुरुषों तक सीमित नहीं थी, बल्कि महिलाओं को भी ज्ञानार्जन के पर्याप्त अवसर उपलब्ध थे। ऋग्वेद में वर्णित अनेक ऋषिकाएँ तथा उपनिषदों में उल्लिखित गार्गी और मैत्रेयी जैसी विदुषियाँ इस तथ्य की पुष्टि करती हैं कि महिलाओं ने ज्ञान-सृजन और दार्शनिक चिंतन में महत्वपूर्ण योगदान दिया था। महिलाओं के लिए उपनयन संस्कार की व्यवस्था तथा ब्रह्मवादिनी परंपरा महिला शिक्षा की उन्नत स्थिति का प्रमाण प्रस्तुत करती है। बौद्ध धर्म के उदय ने भी महिला शिक्षा को नई दिशा प्रदान की। भिक्षुणी संघ की स्थापना तथा महिलाओं को धार्मिक एवं दार्शनिक अध्ययन का अवसर मिलने से उनके बौद्धिक विकास को प्रोत्साहन प्राप्त हुआ, किंतु उत्तरवैदिक काल से महिलाओं की सामाजिक एवं धार्मिक स्थिति में परिवर्तन आने लगा,

eISSN 3139-2377
RESEARCH WORK
A Monthly, Open Access, Peer Reviewed International Research Journal
Volume 02, Issue 06, June 2026

जिसके परिणामस्वरूप उनकी शिक्षा पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ा। उपनयन संस्कार का लोप, बाल-विवाह की प्रथा तथा रूढ़िवादी सामाजिक दृष्टिकोण महिला शिक्षा के पतन के प्रमुख कारण बने।

मध्यकाल तक पहुँचते-पहुँचते महिला शिक्षा की स्थिति अत्यंत कमजोर हो गई। शिक्षा के अवसर सीमित हो गए और अधिकांश महिलाएँ साक्षरता से वंचित रह गईं। यद्यपि कुछ राजपरिवारों एवं उच्च वर्गीय परिवारों में शिक्षा की परंपरा बनी रही, तथापि सामान्य समाज में महिला शिक्षा का स्तर निरंतर गिरता गया। इस परिप्रेक्ष्य में प्राचीन भारत में महिला शिक्षा का ऐतिहासिक अध्ययन न केवल भारतीय शिक्षा व्यवस्था के विकास को समझने के लिए आवश्यक है, बल्कि वर्तमान समय में महिला शिक्षा के महत्व को भी रेखांकित करता है। प्रस्तुत शोध-पत्र इसी ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में प्राचीन भारत में महिला शिक्षा की स्थिति, विकास, उपलब्धियों तथा उसके पतन के कारणों का विश्लेषण करता है।

2. अध्ययन के उद्देश्य

1. वैदिक काल में महिला शिक्षा की स्थिति का अध्ययन करना।
2. महिला विदुषियों के योगदान का विश्लेषण करना।
3. उत्तरवैदिक काल में महिला शिक्षा के पतन के कारणों की पहचान करना।
4. बौद्ध धर्म के प्रभाव का मूल्यांकन करना।
5. मध्यकालीन समाज में महिला शिक्षा की स्थिति का विवेचन करना।

अध्ययन की आवश्यकता

शिक्षा किसी भी समाज के सामाजिक, सांस्कृतिक तथा बौद्धिक विकास का आधार होती है। किसी राष्ट्र की प्रगति में महिलाओं की भूमिका अत्यंत महत्वपूर्ण होती है, इसलिए महिला शिक्षा का ऐतिहासिक अध्ययन विशेष महत्व रखता है। प्राचीन भारत में महिलाओं की शैक्षिक स्थिति वर्तमान समय की अपेक्षा कई दृष्टियों से भिन्न थी। वैदिक काल में महिलाओं को शिक्षा प्राप्त करने, धार्मिक अनुष्ठानों में भाग लेने तथा दार्शनिक चिंतन में सहभागिता का अवसर प्राप्त था, जबकि बाद के कालों में उनकी शैक्षिक स्थिति में उल्लेखनीय गिरावट देखने को मिलती है। इस परिवर्तन के कारणों को समझना भारतीय शिक्षा के इतिहास के अध्ययन के लिए आवश्यक है।

वर्तमान समय में महिला सशक्तिकरण, लैंगिक समानता तथा शिक्षा के सार्वभौमिक अधिकार पर विशेष बल दिया जा रहा है। ऐसी स्थिति में प्राचीन भारत में महिला शिक्षा की परंपरा, उसके विकास, उपलब्धियों तथा पतन के कारणों का अध्ययन समकालीन शैक्षिक विमर्श को ऐतिहासिक आधार प्रदान करता है। यह अध्ययन न केवल महिला शिक्षा के ऐतिहासिक स्वरूप को स्पष्ट करता है, बल्कि यह भी समझने में सहायता करता है कि सामाजिक, धार्मिक एवं सांस्कृतिक कारक किस प्रकार महिलाओं की शैक्षिक स्थिति को प्रभावित करते हैं। अतः प्राचीन भारत में महिला शिक्षा का अध्ययन वर्तमान और भविष्य की शैक्षिक नीतियों तथा महिला सशक्तिकरण के प्रयासों के लिए भी महत्वपूर्ण है।

शोध विधि- यह अध्ययन ऐतिहासिक अनुसंधान पर आधारित है। अध्ययन हेतु उपलब्ध द्वितीयक स्रोतों से प्राप्त तथ्यों का संकलन एवं विषयवस्तु विश्लेषण किया गया। महिला शिक्षा के ऐतिहासिक विकास, प्रमुख विदुषियों के योगदान, बौद्ध धर्म की भूमिका तथा शिक्षा के पतन के कारणों का विश्लेषणात्मक एवं व्याख्यात्मक अध्ययन करते हुए निष्कर्ष प्रतिपादित किए गए।

1.वैदिक काल में महिला शिक्षा की स्थिति

- **वैदिक यज्ञों के लिए पात्र महिलाएं:**

eISSN 3139-2377
RESEARCH WORK
A Monthly, Open Access, Peer Reviewed International Research Journal
Volume 02, Issue 06, June 2026

प्राचीन भारतीय ज्ञान परंपरा में महिलाओं को वैदिक साहित्य का अध्ययन करने और अनुष्ठान करने के लिए पूर्णतः योग्य माना जाता था। ऋग्वेद के कुछ भजन कवयित्रियों की रचनाएँ हैं। ऋग्वेद संग्रह में बीस अलग-अलग कवयित्रियों द्वारा रचित भजन हैं। विश्ववर, सिकता, निववारी, घोष, रोमा, लोपामुद्रा, अपाला और उर्वशी उनमें से कुछ के नाम हैं। पुरुष वैदिक यज्ञ तभी कर सकता था जब उसकी पत्नी उसके साथ हो; दोनों को इस अवसर पर एक विशेष दीक्षा लेनी होती थी और यज्ञ की प्रक्रिया में समान रूप से सक्रिय रूप से भाग लेना होता था। मौर्य काल के अंत तक गृहिणी से अपेक्षा की जाती थी कि वह पति की सहायता के बिना सामान्यतः शाम को और कभी-कभी सुबह भी गृह अग्नि में आहुति दे। अग्रहयन समारोह के श्राष्टरोहण अनुष्ठान में पत्नियाँ कई वैदिक मंत्रों का पाठ करती थीं और फसल यज्ञ केवल स्त्रियों द्वारा ही किए जा सकते थे, 'क्योंकि यह एक लंबे समय से चली आ रही प्रथा थी।'(अल्तेकर, 1965)

- **लड़कियों का उपनयन:** - वैदिक दीक्षा (उपनयन) संस्कार से गुज़रे बिना कोई भी व्यक्ति न तो वैदिक प्रार्थनाओं का पाठ कर सकता था और न ही वैदिक यज्ञ कर सकता था। इसलिए यह स्वाभाविक ही है कि प्राचीन काल में लड़कियों का उपनयन भी लड़कों के उपनयन जितना ही आम रहा होगा। अथर्ववेद (XI. 5. 18) में स्पष्ट रूप से उन कन्याओं का उल्लेख मिलता है जो ब्रह्मचर्य के अनुशासन का पालन करती थीं, ईसा पूर्व 5वीं शताब्दी के सूत्र ग्रंथों में इस संबंध में विवरण दिए गए हैं। यहाँ तक कि मनु ने भी उपनयन को लड़कियों के लिए अनिवार्य संस्कारों में शामिल किया है (II.66)। ईसाई युग की शुरुआत के लगभग बाद, लड़कियों के उपनयन का प्रचलन समाप्त हो गया। (अल्तेकर, 1956)

- **लड़कियों की दो कक्षाएं: -** वैदिक काल में बाल विवाह प्रचलित थे; नियम के अनुसार, लड़कियाँ लड़कों की तरह लंबे समय तक अविवाहित नहीं रह सकती थीं; उन्हें अपने जीवनसाथी से छोटी होना आवश्यक था। उनमें से अधिकांश का विवाह 16 या 17 वर्ष की आयु में हो जाता था, और केवल कुछ ही उस आयु के बाद अपनी पढ़ाई जारी रखती थीं। पहली श्रेणी की लड़कियों को सद्योवद और दूसरी श्रेणी की लड़कियों को ब्रह्मवादिनी कहा जाता था। सद्योवदों की शिक्षा में सामान्य प्रार्थनाओं और यज्ञों के लिए वैदिक भजनों का अध्ययन शामिल था। उन्हें संगीत और नृत्य भी सिखाया जाता था; वैदिक साहित्य में इन कलाओं के प्रति महिलाओं के विशेष लगाव का अक्सर उल्लेख मिलता है।[1] ब्रह्मवादिनी अपनी शिक्षा पूरी होने के बाद विवाह करती थीं; उनमें से कुछ जैसे ऋषि कुशध्वज की पुत्री वेदवती ने कभी विवाह नहीं किया। (अल्तेकर, 1956)

- **स्त्री शिक्षा का विस्तार:** - वैदिक साहित्य में ऐसे अनुष्ठानों का उल्लेख मिलता है जिन्हें विद्वान पुत्रियों के जन्म की कामना करने वाले माता-पिता द्वारा संपन्न किया जाता था; अतः यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि अनेक माता-पिता अवश्य ही इस बात के इच्छुक रहे होंगे कि उनकी पुत्रियाँ सुसंस्कृत और गुणवान महिलाएँ बनें। एक साधारण संपन्न पिता द्वारा अपनी पुत्रियों की शिक्षा की उपेक्षा किया जाना संभव नहीं था। लड़कियों के लिए भी 'उपनयन' संस्कार अनिवार्य था, और इस व्यवस्था ने निश्चित रूप से सभी लड़कियों को एक निश्चित मात्रा में वैदिक और साहित्यिक शिक्षा प्रदान किए जाने को सुनिश्चित किया होगा। अतः यह स्वीकार्य हैं कि जब तक लड़कियों के लिए उपनयन संस्कार का प्रचलन रहा और समाज में बाल-विवाह की कुप्रथा ने जड़ें नहीं जमाई थीं, तब तक संपन्न परिवारों की लड़कियों को काफी अच्छी शिक्षा प्राप्त होती रही होगी। लगभग 500 ई.पू. तक यही स्थिति बनी रही।

2.महिला विदुषियों का योगदान: - जो महिला विद्वान लंबे समय तक अविवाहित रहती थीं, उनकी उपलब्धियां स्वाभाविक रूप से ज़्यादा और अलग-अलग तरह की होती थीं। वैदिक युग में वे वैदिक साहित्य का पूरा ज्ञान हासिल करती थीं और कविताएं भी लिखती थीं, जिनमें से कुछ को पवित्र ग्रंथों में शामिल करके सम्मान दिया गया। छात्राओं को क्रमशः काठी और वृंदारिका के नाम से

eISSN 3139-2377
RESEARCH WORK
A Monthly, Open Access, Peer Reviewed International Research Journal
Volume 02, Issue 06, June 2026

जाना जाता था। काठी-वृंदरिका का मतलब था विद्यालय की सबसे आगे रहने वाली छात्रा, जो वैदिक शाखा में कुछ महिला छात्राओं की सफलता को दिखाता था। जब वैदिक ज्ञान और यज्ञ मुश्किल हो गए तो उनसे जुड़ी एक नई शाखा, जिसे मीमांसा कहा जाता है, विकसित हुई। हालांकि यह गणित से ज़्यादा कठिन विषय था, फिर भी हम देखते हैं कि महिला विद्वान इसमें गहरी दिलचस्पी लेती थीं। कागकृत्सनिन ने मीमांसा पर एक किताब लिखी थी; जो भी छात्रा इसमें विशेषज्ञता हासिल करती थीं, उन्हें कासकृत्सना के नाम से जाना जाता था।

यदि मीमांसा जैसे तकनीकी विज्ञान में महिला विशेषज्ञ इतनी बड़ी संख्या में थीं कि उनके लिए एक नया विशेष शब्द गढ़ने की आवश्यकता पड़ गई, तो हम उचित रूप से यह निष्कर्ष निकाल सकते हैं कि उन महिलाओं की संख्या, जो सामान्य साहित्यिक और सांस्कृतिक शिक्षा प्राप्त करती थीं, काफी अधिक रही होगी। जब समय के साथ उपनिषद काल में दर्शनशास्त्र का अध्ययन लोकप्रिय हुआ, तो महिलाओं ने भी इस विषय में गहरी रुचि लेना शुरू कर दिया। याज्ञवल्क्य की पत्नी मैत्रेयी के साथ भी ऐसा ही था; उन्हें कीमती गहने और कपड़े पहनने की तुलना में दर्शनशास्त्र की गहन समस्याओं का अध्ययन करने में अधिक रुचि थी। राजा जनक के संरक्षण में आयोजित यज्ञ सत्र के दौरान हुई दार्शनिक शास्त्रार्थ प्रतियोगिता में यह ध्यान देने योग्य बात है कि सबसे सूक्ष्म दार्शनिक प्रश्न महिला दार्शनिक, गार्गी वाचक्नवी द्वारा पूछा गया था। वह प्रश्न अपने स्वरूप में इतना सूक्ष्म और गूढ़ था कि याज्ञवल्क्य ने सार्वजनिक रूप से उस पर चर्चा करने से इनकार कर दिया। गार्गी द्वारा याज्ञवल्क्य के साथ की गई तीक्ष्ण तर्क-वितर्क और सूक्ष्म प्रति-परीक्षा यह दर्शाती है कि वह उच्च कोटि की तर्कशास्त्री और दार्शनिक थीं। 'उत्तर-राम-चरित' की आत्रेयी एक और ऐसी महिला थीं, जो वाल्मीकि और अगस्त्य के सान्निध्य में वेदांत का अध्ययन कर रही थीं। उस युग की कुछ विदुषियों जैसे सुलभ, वादवा, प्रथितेयी, मैत्रेयी और गार्गी ने ज्ञान के संवर्धन में वास्तव में महत्वपूर्ण योगदान दिया प्रतीत होता है; क्योंकि उन्हें उन विशिष्ट विद्वानों की श्रेणी में शामिल होने का दुर्लभ सौभाग्य प्राप्त था, जिन्हें कृतज्ञ भावी पीढ़ियों द्वारा दैनिक प्रार्थना (ब्रह्मयज्ञ) के समय प्रतिदिन कृतज्ञता-स्वरूप श्रद्धांजलि अर्पित की जाती थी।

3. उत्तरवैदिक काल में महिला शिक्षा के पतन के कारणों का विश्लेषण

3.1 200 ई.पू. से लगभग 1200 ई. तक महिलाओं की शिक्षा

- **धार्मिक स्थिति में गिरावट:** - इस काल में महिलाओं की शिक्षा को भारी झटका लगा, जिसका मुख्य कारण महिलाओं की धार्मिक स्थिति में आई गिरावट थी। वैदिक काल में उपनयन संस्कार लड़कियों के लिए भी उतना ही अनिवार्य था जितना कि लड़कों के लिए। इस व्यवस्था ने हर लड़की के लिए एक निश्चित स्तर की उच्च शिक्षा सुनिश्चित की थी। उत्तर वैदिक काल में लड़कियों के लिए उपनयन संस्कार पर धीरे-धीरे रोक लगने लगी। लगभग 500 ई.पू. तक यह महज़ एक औपचारिकता बनकर रह गया था। मनुस्मृति, जिसकी रचना लगभग 200 ई.पू. में हुई थी, इस मामले में एक कदम और आगे बढ़ती है और यह घोषणा करती है कि लड़कियों का उपनयन संस्कार बिना वैदिक मंत्रों के उच्चारण के ही किया जाना चाहिए। यह कहा गया कि असल में लड़कियों का विवाह संस्कार ही लड़कों के उपनयन संस्कार के समकक्ष होता है। इसलिए यह स्पष्ट है कि ईसाई युग की शुरुआत तक लड़कियों का उपनयन संस्कार, एक महज़ औपचारिकता के रूप में भी लगभग समाप्त होने की कगार पर था। इसलिए याज्ञवल्क्य (200 ई.) ने लड़कियों के मामले में उपनयन संस्कार पर पूरी तरह से रोक लगाने का तार्किक कदम उठाया (1.13), और बाद के सभी स्मृति-रचयिताओं ने उनके इस कदम का अनुसरण किया। उपनयन संस्कार का बंद होना महिलाओं की धार्मिक स्थिति के लिए अत्यंत विनाशकारी सिद्ध हुआ; उन्हें शूद्रों के समान ही दर्जा दिया गया और वैदिक मंत्रों का उच्चारण करने तथा वैदिक यज्ञ करने के अयोग्य घोषित कर दिया गया। पारिवारिक

eISSN 3139-2377
RESEARCH WORK
A Monthly, Open Access, Peer Reviewed International Research Journal
Volume 02, Issue 06, June 2026

यज्ञों में पति के साथ पत्नी की सहभागिता महज़ एक औपचारिकता बनकर रह गई, और ऐतिशायन जैसे कुछ धर्मशास्त्री तो इस औपचारिक सहभागिता के भी विरोधी थे। (P. M., VI. 1. 2. 2.) (अल्तेकर, 1956)

- **महिलाओं के लिए वैदिक शिक्षा पर रोक -** जब वैदिक साहित्य को ईश्वरीय ज्ञान माना जाने लगा, तो इस बात पर ज़ोर दिया गया कि इसे बहुत ही बारीकी और सही-सही याद किया जाना चाहिए। वैदिक पाठ्यक्रम भी काफ़ी लंबा हो गया था, जिसके लिए लंबे समय तक पढ़ाई की ज़रूरत होती थी, और यह लगभग 24 साल की उम्र तक पूरा नहीं हो पाता था। नियम के मुताबिक, लड़कियों की शादी इस ज़्यादा उम्र तक कभी टाली नहीं जाती थी, यहाँ तक कि वैदिक काल में भी नहीं। आम तौर पर, उनकी शादी लगभग 16 या 17 साल की उम्र में हो जाती थी। इसलिए अमीर परिवारों की लड़कियों को अपनी वैदिक पढ़ाई के लिए सिर्फ़ छह या सात साल ही मिल पाते थे; इसलिए वे उस बारीकी और पूरी तरह से पढ़ाई नहीं कर पाती थीं, जिस पर उस ज़माने में ज़ोर दिया जाता था। गरीब परिवारों में घर के कामों की मजबूरियों की वजह से, उपनयन संस्कार के बाद वैदिक पढ़ाई के लिए बहुत ही कम समय मिल पाता होगा। ऐसे परिवारों की लड़कियाँ अक्सर शादी की रस्मों में दुल्हन के लिए तय किए गए मंत्र भी नहीं बोल पाती थीं; उन्हें ये मंत्र पंडित या दूल्हे को ही बोलने पड़ते थे (Go. G., II. 1. 21.; Jai G. S., I. 20)।(अल्तेकर, 1956)

वैदिक पढ़ाई को सिर्फ़ शौकिया तौर पर करना न सिर्फ़ बेकार, बल्कि खतरनाक भी माना जाता था; वैदिक मंत्रों को बोलने में ज़रा सी भी गलती के नतीजों को बहुत ही बुरा माना जाता था। इसलिए शायद यह महसूस किया गया कि, चूँकि महिलाएँ वैदिक साहित्य की पढ़ाई सही तरीके से नहीं कर सकती थीं, इसलिए परिवार पर आने वाली आध्यात्मिक मुसीबतों से बचने के लिए, जो कि वैदिक पढ़ाई करने वाली शौकिया लड़कियों की गलतियों से पैदा हो सकती थीं, उनकी पढ़ाई पर रोक लगा देनी चाहिए। इस समय तक, बोलचाल की भाषा वैदिक भाषा से पूरी तरह अलग हो चुकी थी; महिलाएँ आम संस्कृत भी नहीं बोल पाती थीं और अपनी बात कहने के लिए प्राकृत या स्थानीय भाषाओं का इस्तेमाल करती थीं। उन्हें वैदिक मंत्रों का सही उच्चारण करने में पुरुषों के मुकाबले ज़्यादा मुश्किल होती होगी, जो कि सही शास्त्रीय संस्कृत बोल सकते थे। इसलिए समाज के नेताओं को लगा कि वैदिक साहित्य को सही तरीके से आगे बढ़ाने के लिए, महिलाओं की पढ़ाई पर रोक लगाना ज़रूरी है। इसलिए उनका उपनयन संस्कार भी बंद कर दिया गया।

- **विवाह की आयु में कमी**: उपनयन संस्कार के बंद होने से जो बुराई पैदा हुई थी, वह विवाह की आयु कम किए जाने से और भी बढ़ गई। वैदिक काल में लड़कियों का विवाह लगभग 16 या 17 वर्ष की आयु में होता था; लेकिन लगभग 500 ईसा पूर्व तक, लड़कियों का विवाह यौवन प्राप्त करने के तुरंत बाद कर देने की प्रथा चल पड़ी। हालाँकि, उस काल के धर्मशास्त्र ग्रंथों में यह अनुमति थी कि यदि कोई उपयुक्त वर न मिल पाए, तो लड़की का विवाह 16 या 17 वर्ष की आयु तक टाला जा सकता है। मनु, यद्यपि सामान्य परिस्थितियों में 12 वर्ष की आयु में विवाह के पक्ष में थे, फिर भी वे इस संभावना पर विचार करने को तैयार थे कि यदि कोई उपयुक्त वर न मिले, तो लड़की जीवन भर अविवाहित रह सकती है।

हालाँकि, इस काल के बाद के लेखकों जैसे याज्ञवल्क्य, संवर्त और यम ने उस अभिभावक की कड़ी निंदा की है, जो लड़की का विवाह उसके यौवन प्राप्त करने से पहले नहीं कर पाता। इस निंदा का स्वाभाविक प्रभाव पड़ा; 11वीं शताब्दी में हिंदू लोग कम आयु में ही विवाह कर लेते थे, और किसी भी ब्राह्मण को 12 वर्ष से अधिक आयु की लड़की से विवाह करने की अनुमति नहीं थी। अनेक विवाह तो इससे भी काफी कम आयु में होते रहे होंगे, क्योंकि इस काल के अंत में लिखी गई स्मृतियों में 7, 8 या 9 वर्ष की आयु में लड़की का विवाह करने के गुणों का बखान किया जाने लगा था। जब इतनी कम आयु में लड़की का विवाह करना एक आदर्श बात मानी जाने लगी, तब स्त्री-शिक्षा का विकास होना भला कैसे संभव था? (अल्तेकर, 1956)

eISSN 3139-2377
RESEARCH WORK
A Monthly, Open Access, Peer Reviewed International Research Journal
Volume 02, Issue 06, June 2026

- **संभ्रांत परिवारों में स्त्री-शिक्षा:** यद्यपि इस काल में समग्र रूप से समाज में स्त्री-शिक्षा को भारी आघात पहुँचा, फिर भी धनी, सुसंस्कृत, कुलीन और राजसी परिवारों में इस पर निरंतर ध्यान दिया जाता रहा। इन परिवारों की लड़कियों को काफी अच्छी साहित्यिक शिक्षा दी जाती थी, हालाँकि उन्हें वैदिक साहित्य पढ़ने की अनुमति नहीं थी। वे संस्कृत और प्राकृत की रचनाओं को पढ़ और समझ सकती थीं, और यहाँ तक कि अपने पुरुष संबंधियों द्वारा अनजाने में की गई गलतियों को भी पकड़ सकती थीं। उन्हें गृह-कला, पाक-कला और संगीत, नृत्य, चित्रकला, माला बनाने तथा गृह-सज्जा जैसी ललित कलाओं में अच्छी तरह पारंगत करने के लिए विशेष प्रयास किए जाते थे। धनी परिवारों में लड़कियों को इन कलाओं और कौशलों में प्रशिक्षित करने के लिए शिक्षक नियुक्त किए जाते थे, जैसा कि राजा अग्निमित्र के राज-परिवार में गणदास और हरदत्त की नियुक्ति से स्पष्ट होता है। इस शिक्षा का अधिकांश भाग विवाह से पूर्व ही पूर्ण हो जाता था; परंतु उस युग की विदुषी स्त्रियों ने विवाह के उपरांत भी अपनी शिक्षा और अध्ययन जारी रखा।
- **इस युग की महिला लेखिकाएँ:** सुसंस्कृत परिवारों की शिक्षित महिलाओं ने साहित्य में अपना योगदान जारी रखा, जैसा कि वैदिक युग की महिला विद्वानों ने किया था। इस दौरान दक्षिण भारत में कई कवयित्रियों का उदय हुआ, जिन्होंने प्राकृत भाषा में कविताएँ रचीं। 'गाथा-सप्तशती' में जिन लेखकों की रचनाओं को शामिल किया गया है, उनमें सात कवयित्रियाँ भी हैं; जिनके नाम हैं: रेवा, रोबा, माधवी, अनुलक्ष्मी, पहज, वड्ढवाही और शशिप्रभा। संस्कृत के कुछ अन्य काव्य-संग्रहों में भी कुछ अन्य कवयित्रियों की स्मृतियाँ सुरक्षित हैं, जिन्होंने संभवतः अत्यंत उच्च कोटि की काव्य-रचनाएँ की थीं। शीलाभट्टारिका अपनी सहज और लालित्यपूर्ण शैली के लिए प्रसिद्ध थीं, जिसकी मुख्य विशेषता अर्थ और ध्वनि का सुमधुर सामंजस्य था। देवी गुजरात की एक जानी-मानी कवयित्री थीं, जिनकी मृत्यु के उपरांत भी उनकी रचनाओं ने अपने पाठकों को प्रभावित करना जारी रखा। बरार क्षेत्र में विजयांका की ख्याति कालिदास के बाद दूसरे स्थान पर थी। ऐसा प्रतीत होता है कि संस्कृत के कवियों और कवयित्रियों के मध्य उन्होंने वास्तव में एक अत्यंत उच्च स्थान प्राप्त किया था, क्योंकि कवि राजशेखर ने उनकी तुलना साक्षात् सरस्वती से की है।

हाल ही में 'कौमुदीमहोत्सव' नामक एक नाटक की खोज हुई है, जिसकी रचना एक ऐसी कवयित्री ने की थी, जिसका नाम संभवतः विद्या अथवा विजिका रहा होगा। इस नाटक की कथावस्तु पाटलिपुत्र में घटित एक राजनीतिक क्रांति की घटनाओं पर आधारित है; जिससे यह सिद्ध होता है कि उस काल की महिलाएँ भी राजनीतिक इतिहास की घटनाओं के प्रति उदासीन नहीं थीं। सुभद्रा, सीता, मरुला, इंदुलेखा, भवदेवी और विकटनितंबा कुछ अन्य ऐसी कवयित्रियाँ हैं, जिनका उल्लेख परवर्ती काव्य-संग्रहों में मिलता है। यह अत्यंत खेद का विषय है कि हम उनकी मूल रचनाओं से वंचित हो गए हैं। इस युग की महिला विद्वानों ने साहित्य-समीक्षा के क्षेत्र में भी रुचि प्रदर्शित की थी; राजशेखर की पत्नी एक कुशल समीक्षक होने के साथ-साथ एक कवयित्री भी थीं। शंकराचार्य और मंडन मिश्र के मध्य हुए शास्त्रार्थ में निर्णायक की भूमिका मंडन मिश्र की ही विदुषी पत्नी ने निभाई थी; जिससे यह स्पष्ट होता है कि मीमांसा, वेदांत और साहित्य के क्षेत्र में उनकी पकड़ अत्यंत सुदृढ़ रही होगी। कुछ महिलाएँ चिकित्सा-शास्त्र के अध्ययन की ओर भी आकर्षित हुईं; जिनमें से अधिकांश ने संभवतः स्त्री-रोग विशेषज्ञता के क्षेत्र में महारत हासिल की थी। इनमें से कुछ महिला चिकित्सकों ने चिकित्सा-विज्ञान पर प्रामाणिक ग्रंथों की रचना भी की थी। 8वीं शताब्दी ई. में अरबी भाषा में अनुवादित हिंदू चिकित्सा ग्रंथों में से एक पुस्तक प्रसूति-विज्ञान पर आधारित थी, जिसे एक महिला चिकित्सक ने लिखा था; अरबी अनुवाद में उस महिला का नाम 'रूसा' मिलता है।

- **साधारण परिवारों में स्त्री शिक्षा:** इस प्रकार संभ्रांत परिवारों की विदुषी स्त्रियों की उपलब्धियाँ काफी ऊँची थीं। हालाँकि, समाज में संभ्रांत परिवार अपेक्षाकृत कम ही थे। वे अपनी बेटियों के लिए विशेष शिक्षक नियुक्त करने का खर्च उठा सकते थे। दूसरी

eISSN 3139-2377
RESEARCH WORK
A Monthly, Open Access, Peer Reviewed International Research Journal
Volume 02, Issue 06, June 2026

ओर, साधारण परिवारों की आर्थिक स्थिति इतनी अच्छी नहीं थी; इसलिए यह कहना मुश्किल है कि 6वीं या 7वीं शताब्दी ई.पू. के बाद औसत स्त्री को कोई शिक्षा मिल पाती थी या नहीं। नारद-स्मृति के टीकाकार असहाय (जो 8वीं शताब्दी ई.पू. में हुए थे) स्त्रियों की पुरुषों पर निर्भरता के सिद्धांत को इस आधार पर सही ठहराते हैं कि उचित शिक्षा के अभाव में उनकी बुद्धि पुरुषों की तरह विकसित नहीं हो पाती।

3.बौद्ध धर्म का स्त्री शिक्षा पर प्रभाव: प्रारंभ में विहारों में स्त्रियों को प्रवेश कि अनुमति नहीं थी किन्तु कालांतर में बुद्ध ने अपनी संघ-व्यवस्था में स्त्रियों के प्रवेश की अनुमति दी, जिससे कुलीन और व्यापारी समुदायों की स्त्रियों में शिक्षा और दर्शन के प्रसार को एक नई गति मिली। 'ब्रह्मवादिनी' स्त्रियों की ही तरह, बौद्ध विहारों में भी अनेक स्त्रियाँ धर्म और दर्शन के शाश्वत सत्यों को समझने और उनका पालन करने के उद्देश्य से ब्रह्मचर्य का जीवन व्यतीत करती थीं। उनमें से कुछ तो भारत से बाहर, सीलोन (श्रीलंका) जैसे देशों में भी गईं और वहाँ पवित्र धर्मग्रंथों की शिक्षिकाओं के रूप में प्रसिद्ध हुईं। 'थेरीगाथा' की रचना निर्वाण प्राप्त करने वाली बौद्ध भिक्षुणियों द्वारा की गई थी जिसमें 32 अविवाहित थीं और 18 विवाहित। अविवाहित स्त्रियों में सुभा, अनुपमा और सुमेधा अत्यंत समृद्ध परिवारों से थीं; कहा जाता है कि राजकुमारों और धनी व्यापारियों ने उनसे विवाह का प्रस्ताव भी रखा था। जब इतनी बड़ी संख्या में स्त्रियाँ धर्म और दर्शन की साधना में ब्रह्मचर्य का जीवन जी रही थीं, तो यह स्वाभाविक ही है कि उनमें बुद्धि और शिक्षा का सामान्य स्तर काफी ऊँचा रहा होगा। (अल्तेकर, 1956)

- **महिलाओं की शिक्षा व्यवस्था** यह पूर्व विदित है कि लंबे समय तक परिवार ही एकमात्र शैक्षिक संस्था थी, यहाँ तक कि लड़के भी केवल अपने पिता, चाचा या अन्य बड़ों से ही शिक्षा प्राप्त करते थे। स्वाभाविक रूप से लड़कियों के साथ भी यही स्थिति थी। हालाँकि, जब बाद की स्मृतियाँ जैसे 'यम-स्मृति' यह नियम बनाती हैं कि लड़कियों को केवल उनके निकट संबंधी ही शिक्षा दें, तो संभवतः वे ईसाई युग की शुरुआत के आस-पास प्रचलित स्थिति का ही उल्लेख कर रही होती हैं; क्योंकि ऐसे प्रमाण मौजूद हैं जो दर्शाते हैं कि इससे पहले के काल में स्थिति ऐसी नहीं थी। जब बड़ी संख्या में स्त्रियाँ उच्च शिक्षा प्राप्त कर रही थीं और ज्ञान के विकास में अपना योगदान दे रही थीं, तो यह मानना स्वाभाविक ही है कि उनमें से कुछ ने निश्चित रूप से अध्यापन-कार्य को ही अपना पेशा बनाया होगा। और संस्कृत भाषा में 'उपाध्याया' तथा 'उपाध्यायानी' शब्दों की उपस्थिति इस अनुमान की पुष्टि करती है। इन दोनों शब्दों में से दूसरा शब्द (उपाध्यायानी) एक सम्मानसूचक उपाधि है जो किसी शिक्षक की पत्नी को दी जाती थी, भले ही वह स्वयं शिक्षित हो या न हो। इसके विपरीत, पहला शब्द (उपाध्याया) उस स्त्री का बोध कराता है जो स्वयं एक शिक्षिका थी। शिक्षिकाओं को शिक्षकों की पत्नियों से अलग पहचानने के लिए एक विशेष शब्द का गढ़ा जाना यह दर्शाता है कि समाज में उनकी संख्या कम नहीं रही होगी।12वीं शताब्दी तक हिंदू समाज में 'पर्दा-प्रथा' का कोई चलन नहीं था; अतः स्त्रियों के लिए अध्यापन-कार्य अपनाने में कोई कठिनाई नहीं थी। संभवतः शिक्षिकाएँ स्वयं को केवल छात्राओं को पढ़ाने तक ही सीमित रखती थीं, यद्यपि उनमें से कुछ ने छात्रों को भी पढ़ाया होगा। पाणिनि ने छात्राओं के लिए बने छात्रावासों का उल्लेख 'छात्रशालाओं' के रूप में किया है; और संभवतः इन छात्रावासों का प्रबंधन या देखरेख 'उपाध्यायाओं' (अर्थात् उन शिक्षिकाओं) के हाथों में होता था, जिन्होंने अध्यापन को ही अपना पेशा बना लिया था।

- **सह-शिक्षा की व्यवस्था:** 8वीं शताब्दी ईस्वी में लिखे गए भवभूति के 'मालतीमाधव' से हमें ज्ञात होता है कि भिक्षुणी कामंदकी ने भूरिवसु और देवरात के साथ एक प्रसिद्ध शिक्षा केंद्र में शिक्षा प्राप्त की थी। इससे यह पता चलता है कि कुछ शताब्दियों पहले, कभी-कभी लड़के और लड़कियाँ उच्च शिक्षा प्राप्त करते समय एक साथ पढ़ते थे। 'काशिका' में ऐसे स्कूलों में संदिग्ध इरादों के साथ दाखिला लेने वाले छात्रों का उल्लेख मिलता है। नाटक 'उत्तर-राम-चरित' में भी यह वर्णित है कि आत्रेयी, कुश और लव के साथ

eISSN 3139-2377
RESEARCH WORK
A Monthly, Open Access, Peer Reviewed International Research Journal
Volume 02, Issue 06, June 2026

शिक्षा प्राप्त कर रही है (अंक II)। पुराणों में वर्णित कहोड़ और सुजाता, तथा रुरु और प्रमद्वरा की कहानियाँ भी सह-शिक्षा की ओर ही संकेत करती हैं। ये कहानियाँ आगे यह भी दर्शाती हैं कि जिस समय लड़कियों का विवाह अधिक उम्र में होता था और वे सह-शिक्षा प्राप्त करती थीं, उस समय इसके परिणामस्वरूप कभी-कभी प्रेम-विवाह भी हो जाया करते थे। हालाँकि, जब योग्य महिला शिक्षिकाएँ उपलब्ध होती थीं, तो माता-पिता शायद अपनी बेटियों को उन्हीं के सान्निध्य में पढ़ने के लिए भेजना पसंद करते थे; परंतु जब वे उपलब्ध नहीं होती थीं, तो वे अपनी बेटियों को पुरुष शिक्षकों के पास पढ़ने के लिए भेज देते थे और ऐसे में स्वाभाविक रूप से उन्हें पुरुष छात्रों के साथ ही पढ़ना पड़ता था। ऐसे युग में, जहाँ प्रेम-विवाह को कोई असामान्य बात नहीं माना जाता था, सह-शिक्षा को लेकर माता-पिता के मन में किसी प्रकार का भय होना स्वाभाविक नहीं था। (अल्तेकर, 1956)

5.मध्यकालीन समाज में महिला शिक्षा की स्थिति

- **1200-1800 ई. के दौरान महिला शिक्षा:** मुस्लिम शासन के दौरान महिलाओं में साक्षरता का प्रतिशत बहुत तेज़ी से गिरा। पुराने, अमीर और संभ्रांत परिवार आमतौर पर राजनीतिक उथल-पुथल के कारण बर्बाद हो गए, और वे अब अपनी लड़कियों की शिक्षा के लिए विशेष व्यवस्था करने की स्थिति में नहीं रहे। लड़कियों के लिए कोई स्कूल नहीं थे। निस्संदेह, नए शासन के तहत कुछ नए हिंदू परिवार महत्वपूर्ण पदों पर पहुँचे। लेकिन उनकी संख्या बहुत कम थी और उनमें आमतौर पर इतना सांस्कृतिक बोध नहीं था कि वे अपनी लड़कियों के लिए शिक्षक नियुक्त करने के बारे में सोचें। राजपूत सरदारों और कुछ बंगाली ज़मींदारों की बेटियाँ आमतौर पर 19वीं सदी तक पढ़ना-लिखना जानती थीं; उनमें से कुछ, यदि दुर्भाग्यवश विधवा हो जाती थीं, तो वे अपना जीवन सीखने-पढ़ने में समर्पित कर देती थीं और कई बार तो शिक्षिका भी बन जाती थीं।[1] जैन विधवाओं को भी कभी-कभी भिक्षुओं द्वारा पढ़ना-लिखना सिखाया जाता था, ताकि वे अपने धर्मग्रंथों को पढ़ सकें। हालाँकि, ये मामले अपवाद स्वरूप थे। कुल मिलाकर, समाज में महिला शिक्षा के प्रति पूर्वाग्रह पनप गया था। यह माना जाता था कि जिस लड़की को पढ़ना-लिखना सिखाया जाता है, वह शादी के तुरंत बाद ही विधवा हो सकती है।

18वीं सदी के बाद साक्षरता में गिरावट इतनी तेज़ी से हुई कि 19वीं सदी की शुरुआत तक सौ में से मुश्किल से एक महिला ही पढ़-लिख पाती थी। मालवा और मद्रास प्रेसीडेंसी में भी हालात कुछ ऐसे ही थे। बाद वाले प्रांत में, 1826 में, 1,57,664 लड़कों की तुलना में केवल 4,023 लड़कियाँ ही स्कूलों में जा रही थीं। उस समय की प्रेसीडेंसी की जनसंख्या के अनुसार, स्कूल जाने की उम्र के 16 प्रतिशत लड़के प्राथमिक शिक्षा प्राप्त कर रहे थे; इसलिए, लड़कियों का यह प्रतिशत आधे से भी कम था। हिंदू आबादी के कुछ वर्गों में, जैसे कि नायर समुदाय में, साक्षरता का स्तर काफी ऊँचा था, लेकिन ऐसे समूह बहुत कम और अपवाद स्वरूप थे। उपलब्ध सभी प्रमाणों से पता चलता है कि 19वीं सदी की शुरुआत तक, लगभग 99 प्रतिशत महिला आबादी निरक्षर हो चुकी थी।(अल्तेकर, 1956)

उपसंहार- प्रस्तुत अध्ययन से स्पष्ट होता है कि प्राचीन भारत में महिला शिक्षा की स्थिति एकरूप नहीं थी, बल्कि विभिन्न ऐतिहासिक कालों में सामाजिक, धार्मिक तथा सांस्कृतिक परिवर्तनों के अनुरूप उसमें निरंतर परिवर्तन होता रहा। वैदिक काल में महिलाओं को शिक्षा, वैदिक अध्ययन तथा बौद्धिक गतिविधियों में सक्रिय सहभागिता के अवसर प्राप्त थे, जिसके परिणामस्वरूप गार्गी, मैत्रेयी और लोपामुद्रा जैसी विदुषियों ने भारतीय ज्ञान-परंपरा को समृद्ध किया। बौद्ध धर्म ने भी महिलाओं के लिए शिक्षा एवं वैचारिक विकास के नए आयाम स्थापित किए। इसके विपरीत उत्तरवैदिक एवं मध्यकालीन काल में सामाजिक रूढ़ियों, बाल-विवाह तथा महिलाओं की बदलती सामाजिक स्थिति ने उनकी शैक्षिक प्रगति को सीमित कर दिया। अध्ययन यह प्रतिपादित करता है कि महिला शिक्षा का विकास केवल शैक्षिक व्यवस्थाओं का परिणाम नहीं होता, बल्कि वह समाज की व्यापक वैचारिक एवं सांस्कृतिक संरचनाओं से भी

eISSN 3139-2377
RESEARCH WORK
A Monthly, Open Access, Peer Reviewed International Research Journal
Volume 02, Issue 06, June 2026

गहराई से प्रभावित होता है। प्राचीन भारत में महिला शिक्षा के इतिहास का पुनर्पाठ यह संकेत देता है कि महिलाओं को शिक्षा से जोड़ना भारतीय परंपरा के विरुद्ध नहीं, बल्कि उसकी एक सशक्त ऐतिहासिक विरासत का हिस्सा है। इस दृष्टि से यह अध्ययन समकालीन शिक्षा व्यवस्था में लैंगिक समानता, महिला सशक्तिकरण तथा समावेशी शिक्षा की आवश्यकता को ऐतिहासिक आधार प्रदान करता है।

संदर्भ

अल्तेकर, ए. एस. (1965). एजुकेशन इन एंशिएंट इंडिया (6वाँ संस्करण). वाराणसी: नंद किशोर एंड ब्रदर्स।

अल्तेकर, ए. एस. (1956). द पोज़ीशन ऑफ वूमेन इन हिंदू सिविलाइज़ेशन: फ्रॉम प्रीहिस्टोरिक टाइम्स टू द प्रेज़ेंट डे (3रा संस्करण). दिल्ली: मोतीलाल बनारसीदास।

मुखर्जी, राधाकुमुद. (1989). एंशिएंट इंडियन एजुकेशन: ब्राह्मणिकल एंड बौद्धिस्ट (4था संस्करण). दिल्ली: मोतीलाल बनारसीदास।

पाण्डेय, राजबली. (1969). एंशिएंट इंडियन एजुकेशन. वाराणसी: चौखम्बा संस्कृत सीरीज कार्यालय।

बाशम, ए. एल. (1954). द वंडर दैट वाज़ इंडिया. लंदन: सिड्गविक एंड जैक्सन।

थापर, रोमिला. (2002). अर्ली इंडिया: फ्रॉम द ओरिजिन्स टू ए.डी. 1300. बर्कले: यूनिवर्सिटी ऑफ कैलिफोर्निया प्रेस।

शर्मा, रामशरण. (2005). इंडियाज़ एंशिएंट पास्ट. नई दिल्ली: ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस।

काणे, पी. वी. (1974). हिस्ट्री ऑफ धर्मशास्त्र (खंड 2). पुणे: भांडारकर ओरिएंटल रिसर्च इंस्टीट्यूट।

चक्रवर्ती, उमा. (1993). रिकास्टिंग वूमेन: एसेज़ इन कॉलोनियल हिस्ट्री. नई दिल्ली: काली फॉर वूमेन।

कपूर, सुभाष. (2002). वूमेन इन एंशिएंट इंडिया. नई दिल्ली: कॉस्मो पब्लिकेशन्स।

विद्यालंकार, सत्यकेतु. (2004). प्राचीन भारत का सामाजिक एवं सांस्कृतिक इतिहास. नई दिल्ली: सरस्वती सदन।

पाण्डेय, गोविन्दचन्द्र. (1997). वैदिक संस्कृति. इलाहाबाद: लोकभारती प्रकाशन।